श्री विद्याधरस्तवः

संपादक

श्याम सुन्दर जतू कनिकदल

(श्रीनगर)

SRI VIDYADHARSTAVA

BY

SHYAM SUNDAR JATOO

KANI KADAL SRINAGAR

विक्रमसंवत् २०१०

मार्ग शुक्ल तृतीया ॥

Printed at

Kashmir Standard Press

श्री शिवो जयति

उपोद्धातः

चिदानन्देषण ज्ञान क्रियावर्ष्मा शिवोवतात् ।
लूतेवान्तस्थ विश्वौघ मीलनोन्मीलनक्षमः ॥

चिदानन्देच्छाज्ञान क्रियामयाऽपरिमितैश्वर्यवपुः स्वतन्त्रोऽनुत्तरा परपर्यायः परमशिवः क्रोडीकृतसमस्त भावरत्नराशी रत्नाकर इवऽमितवैचित्र्यभरितं समस्तमपि शिवादि धरण्यन्तं वस्तु सामान्यं मयूराण्डरसवत्स्वात्माभेदेनामर्शयति। समस्तमपि तत् जगद्रूपेणोल्लिलासयिषुः स्व स्वातन्त्र्य माहात्म्या दुपादानादि कारणमन्तरेणैव स्वभित्तावेवानन्दोद्रेकाच्छिवादि धरण्यन्त मादिक्षान्तं वा विश्वं सिन्धुरिववीचि संघातं स्वरूपाभिन्नमपि तत्कालीनोच्छ्राय परिणाहादि परिणतं बिन्दु शीकरादिना देशकालाकारतःश्यानीभूतं हिम, शिशिर, स्फाटिकादि, काठिन्यरूपंप्राप्तं जलराशिधर्मविलक्षणं स्वरूपाद्भिन्नमिवा भासयति।

पञ्चकृत्यकरण प्रकृतिरयं परमशिवः स्वात्मन्यभेदेनावस्थितं शक्तितन्तुवृन्दं मर्कटकइवेदंजगत् जालरूपेणातन्वानो वितानितमपिवा स्वात्मन्येव विलापयन् स्व स्वातन्त्र्येणातिभरित विभव

स्तुच्छतम धूलिकर्दमप्राय वनान्तर पल्वलान्तरा द्यवगाहन तोऽनवध्वस्तैश्वर्योऽतिपरिष्कृततनुः प्रत्यारुढो महीपतिरिव, क्रीडारसिकः स्वात्मप्रच्छादनदक्षः परमशिवो भैक्षो विश्व भरणा रमणा वमनधर्माऽपि विसर्जित पराहन्ताकः संकुचित महाशक्तिप्रचयोऽणुतामाप्त अपूर्णमन्यता, नियति नियतता, कर्मानुष्ठानतालक्षणाणव-मायीय-कार्ममल वलिततनुर्वारिराशि समुत्थितो बिन्दुरिव स्वीकृत संकुचितप्रमातृभावो जीवदशा मापन्नः संसारावर्तं निमज्जनोन्मज्जनदशामनुभवति।

स्व स्वातन्त्र्येणैव भूयोऽपि बिन्दुरिव पयोराशौ पूर्णप्रमातृ प्रतिमीलनकामः पराहन्तापरामर्शनापासित संकुचितप्रमातृ भावः प्रहीणाणवादि मलत्रयो निस्तरङ्गाम्भोधिप्रख्यं स्वकं शिवधामाप्तः शिवीभवतीति समयान्तरविलक्षणः परम-रहस्यगर्भः शिवाम्नायसिद्धान्तः।

अनादि सिद्धमप्येतद्रहस्यं कलिप्रादुर्भावाच्छिन्नाम्नाय विन्महर्षिषु कलापिप्रभृति कैलासाद्रि दुर्गमग्राम प्रदेशान्तर्गतेषु चार्वाक सौगतप्रभृति भेदवादिसिद्धान्त प्राचुर्यात्कैवल्यलक्षणात्परम पुरुषार्थाद्वञ्चितप्रायो लोक, एतात्त्विकं रहस्यमधिगच्छत्वित्यनुजिघृक्षापरः परमकारुणिकः परमशिवः कैलासाद्रौ श्रीमच्छ्रीकण्ठ नाथमूर्त्या परमोत्तमतापसं दुर्वाससमुपदिश्यैतद्रहस्यशास्त्र प्रवर्तनायाचोदयत्। सोऽपिस्वे मानसेपुत्रे त्र्यम्बकादित्ये समस्तमप्ये-तच्छास्त्रं सरहस्यं संक्रामयामास। त्र्यम्बकादित्योऽपि तेरम्बा

इतिभाषया प्रसिद्धां त्र्यम्बकाख्यां गुहां गंत्वा तत्र मानसं पुत्रमुपदिश्यान्तरिक्षपथा स्वेष्टंधाम प्रययौ । एवमेवो पदिष्टोपदेश्यपरंपराऽनाख्यातिपराङमुखी परमशिवाद्वयामृतप्लुता ममायता यवश्चतुर्दश सिद्धाः समभवन् ।

पञ्चदशांसिद्धः सर्वशिवाम्नायरहस्यविशारदो बहिर्मुखत्वाद्विधिना कांचन ब्राह्मणकन्यां परिणीतवान् । तत्पुत्रः सङ्गमादित्यः कालेन काश्मीरेषु समाययौ । तस्माद्वर्षादित्यस्ततोऽरुणादित्यस्तत आनन्दादित्यस्तस्मात्सोमानन्दः समुत्पन्नोथःकिलशिवदृष्टयाभिध मनुपमंशिवदर्शनग्रन्थं निर्मितवान् । तच्छिष्यः श्रीमानुत्पलदेवाचार्यः समभूद्येन शिवदृष्टिमतानुयायि श्रमदीश्वर प्रत्यभिज्ञाख्यं परमोत्तम दर्शनशास्त्रं स्ववगताधरदर्शनानां सहृदयानामीषद्विकसितानि हृत्कमलानि सामस्त्येन विकासयन्निरमायि । यच्चोक्तं शास्त्रान्ते ग्रन्थकर्त्रा 'इति प्रकटितोमया सुघटएषमार्गोनवो महागुरुभि रुच्यतेस्म शिवदृष्टिशास्त्रेयथा इति' ॥ श्रीमदुत्पलदेवाचार्य शिष्याः श्रीमल्लक्ष्मणगुप्ताचार्यास्तच्छिष्याः श्रीपरात्रिंशिका, श्री प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, वृहती विमर्शिनी, श्रीतंत्रालोकादि परमरहस्यविज्ञानभरित शिवदर्शनग्रंथ तद्विवरणनिर्मातारः श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्याः श्रीमदभिनवगुप्तपादाः समभवन् । तेषामेव शिष्यवर्याः श्रीक्षेमराजप्रभृतयः समभवन् यदुपदेशसंप्रदाय परंपरापरिचिताः श्रीमदीश्वरस्वामिपादाः स्वभ्रात्रीयरत्नानां श्रीमच्छ्रीरामस्वामिपादानां हृत्सरः सरहस्यसंप्रदायेन शिवाम्नायामृतेन पूरितवन्तः । यद्धि शिवाम्नाया

मृत मुर्वरावांसुवृष्टिरिवात्युत्तम फलोत्पादकमभूत्। येन तत्कालीन स्तत्सेवकजनसमुदायो विद्याधरैरपि दुर्लभां विद्यां सुरैरपि लब्धुमशक्यमैश्वर्यं सिद्धैरपि प्राप्तुमशक्यांसिद्धिं श्रीस्वामिश्रीराम पादानां कृपाकटाक्षमात्रेणाधिगतवान्।

तेषामेव कृपामत्रं श्रीस्वामिविद्याधरपादाः समभवन् येषां दिङ्मात्रं चरित्रं वक्ष्यमाणे विद्याधरस्तवे वर्ण्यते।

यद्यप्येष शैवागमोऽन्यशास्त्रापेक्षयाऽल्पेनैव कालेनातिरहस्य शक्तिनिकरप्रसरहेतुः परप्रमातृ विश्रान्ति लक्षण परमपुरुषार्थ हेतुश्चास्त्येव तथापि सिद्धीक्षीरमिव परमेश्वरशक्तिपातपवित्रितान्तः करणानामेवहृदयेषु संलग्नप्रतिमो महीयसामपि महीयसींविभूति मधिगमयति। तदितरेषांचित्तेषु संलग्नः शर्करिलेनिपतितं बीजमिवायासमात्रफलो बीजक्षितकश्च भवति। विषयोषासाधि वासितोयंलोकोनिमिषार्धमपि शिवाम्नायेस्मि स्वान्तसमाधानाक्षम स्तात्त्विका पुरुषार्था वञ्चितप्रायोंशिनांशांशिनवा परमोत्कृष्टां सम्पदमिमां भुनक्तिकिति विचारवतामया 'परमेश्वरस्य स्व स्वातन्त्र्यैणाणुता स्वीकारे तद्दशोचित संसारैवस्थ नुभवः, स्तनैव स्वातन्त्र्येण तादृशं स्वात्मानमुद्दिधीर्षोः पूर्णप्रमातृलक्षण पराहन्ताभ्यसन मन्तेच परप्रमातरि प्रतिमीलनं जायत' इति सौकर्य्येणैवानभ्यस्तविद्यानां मलिनचेतसां सुगम्यं यथास्या तथा शास्त्रप्रमाणपूर्वकं समस्तमप्येतन्महाफलावाप्तिकर मत्यल्पे-नैव कालेन भविष्यतीतिसुविमृश्य गुरुस्तवमिषेण निर्मितमिदं शास्त्रं प्रकाश्यते॥

इति श्रीमन्माहेश्वराचार्यवर्य श्री हरभट्ट शास्त्रि शिष्यो मतीनारायण सूनुः श्यामसुन्दरः॥

उपोध्दात-

चित्, आनन्द, इच्छा ज्ञान, क्रिया, इन पांच शक्तियों से पूर्ण, तथा स्वतंत्र परमशिव जिसका नाम अनुत्तरशिव भी कहाजाता है, शिवतत्त्व से पृथिवीतत्त्वतक असंख्य जगतसमूह अथवा आकार से क्षकारतक शब्दसमुदायको अपने स्वरूप में धारण करके परमानन्द परामर्श करता है (जैसे समुद्र अनेकप्रकार रत्नजात तथा असंख्यप्रकार तरङ्ग बिन्दु शीकरआदि धारण करता है, यद्वा जैसे मोर आदि विचित्रवर्णपक्षी को अण्ड के रसमें भविष्य में होने वाली रङ्गोंकी विचित्रता अभेद भाव से लय होती है) यही परमशिव इसी शिवतत्त्व से प्रथिवी तत्त्वतक होने वाले पदार्थसमूह को यद्वा अकार से क्षकार तक शब्द समुदाय को भेद से प्रकटाने पर अपने स्वातन्त्र्य के महिमा से उपादानादिकारकों के विना ही विचित्रजगतको विस्तृत करता है।

कोई भी प्राणी किसी वस्तु के बनानेपर उपादानादि कारकोंकी अपेक्षा रखता है, जैसे कोई चित्रकार चित्र बनानेपर पत्रआदि जिसपर चित्र बनायाजाये, वर्ति (ब्रुश) जिससे लेखलेपआदि कियाजाये तथा रङ्गआदि जिससे चित्र भराजाये तथा प्रकटायाजाये, की अपेक्षा रखता है, इनके अभाव पर चित्र सर्वथा असंभव हो जाता है कारण

है कि जीव नियतिनियन्त्रित है ईसके प्रतिकूल ईश्वर है अर्थात् ईश्वर सत्यसंकल्प है इसकी इच्छा का निरोध कदापि नही होसकता है यह उसके स्वातन्त्र्य की महिमा है। जैसे प्राणी अपने मनोराज्य की रचना में संकल्प के विना कोई भी पदार्थ काममें नहीलाता है किन्तु अन्तःकरण से नगरआदि संपूर्णरूप से बनालेता है और उस नगरआदि का आनन्द भी अनुभव करता है अपने ही हृदय में उस जगत को लय भी करता है और कचित् कदाचित उस रचितजगत को अपनी स्मृति में भी लाता है अथवा पूर्णरूप से अपने हृदयसमुद्र के तल में लगादेता है जिसकी स्मृति कदापि नही आती है, यही जीवका पञ्चकृत्य कहलाता है। किन्तु जीव संकुचित प्रमाता होनेके कारण इसके इतने कार्य को उसीक्षणमें नाश भी होजाता है और उस रचित जगत को प्रायः उस निर्माता के विना कोईभीप्राणी नही देखसकता है। ईश्वर के संकल्प को इतनी सत्यता है कि उसका संकल्प इतने अतिविस्तृत रूप में विद्यमानहै जो विस्तार पृथिवी, समुद्र पर्वत, आकाश सूर्यचन्द्रमादि ग्रहमण्डल एवंस्वर्गादि लोकों से पूर्ण महविशालतर ब्रह्माण्डरूप में विद्यमान है। यद्यपि यह जगत अतिविस्तीर्ण तथा नानातः दिखाई देता है एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से विलक्षण गुण तथा रूपवाला दिखाई देता है तथा दूसरा तीसरे से किन्तु सारा विश्व केवल चिद्रसमात्र ही

तथा २ विकसित हुआ है जो चिद्रस आनन्दघन परमशिव की आनन्दलहरी है। प्रश्न-क्यों यह आनन्दलहरी इतने महाकाय विश्व के रूप में परिणत हुई है? उत्तर-यह अति उद्रिक्तता वा स्फुरत्ता का महात्म्य है अर्थात ईश्वर अपने उछलते उमंगते हुये अतिमहान आनन्दरस से अपने आपको परिपूर्ण रखकर बाह्यतः स्थूलरूप जगत का विस्तार बनालेता है जैसे कोई नागराज (जिसका जलका उछलनाही महत्व होता है) अपने उछलते उमंगते हुए अतिमहान जलप्रवाह से अपने आप (कुंड) को भरकर उसके अतिरिक्त बाहिर भी नदी, नाला सर झरने आदि की सत्ता देता है। जैसे समुद्र रस (जल) से विभिन्न और कोई वस्तु नही है जलका हीअगाध तथा अनन्त भण्डार है जो समुद्र अपने स्वरूप को बडे से बडे तथा छोटे से छोटे तरङ्ग बिन्दु छींटे आदि विकार में परिणात करता है और जो तरङ्ग आदि देशकालादिवशात कोहरा।शिशिर मोती सुटका आदि रत्नों में तथा वर्षा हिम औले आदि रूपोंमें परिणत होकर समुद्र से विलक्षण वस्तु प्रतीत होता है किन्तु सूक्ष्म विचार से सारे तरङ्ग आदि और वर्षा आदि समुद्ररस से अनुमात्रभी विभिन्न नही है। एवं क्रीडाशील परमेश्वर मोर आदि के अण्डे की भांति स्वान्तस्थचिद्रस को भविष्य में प्रकटहोनेवाले विचित्रवर्ण पंक्षी के प्रकार कठिन तथा विचित्र जगतरूपमें अतिविस्तृत बनालेता है।

सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान, अनुग्रह, इनपांचों का नाम पञ्चकृत्य है इनका नाम शक्तियां भी है इनमेंसे प्रथम तीनोंका नाम स्पष्ट है। पदार्थका संस्कारमात्र चित्तमें रखना पिधान कहलाता है। संस्कारमात्र को भी स्वात्मस्वरूपमें लय करना, जैसाकि स्मृति में भी कदापि न आजायं, अनुग्रह कहलाता है। महाऐश्वर्यपूर्ण स्वतन्त्रसंराट् जो अपना राज-सिंहासन छोडकर तुच्छतम शिकार की लालसा से धूल तथा कांटे आदिसेपूर्ण जंगलोंमें, तथा कीचड आदिसेपूर्णसरों में हिरण आदि तथा मछली आदि पकडनेकी क्रीड़ा करने से कीचड तथा धूल से लथपथ होकर अपरिचितमनुष्यका घृणायोग्य अधमशिकारी दिखाईदेता है, किन्तु अपनी अटूट राज्यसंपदा से पूर्ण होनेके कारण अपनी इच्छासे अपनी मलिनता को छोडकर राजवेश धारण करके अपने सिंहासन का ग्रहण करता है। एवं पञ्चकृत्यकरण-शील परमेश्वर मकड के प्रकार अपने स्वरूपमें अभेद से स्थित शक्तितन्तु समूह से क्रीडाकरतेकरते बाहिर से जगत्जाल का विस्तार करताहुआ तथा विस्तारितजगत् का संहार करताहुआ भी सृष्टिआदि पञ्चकृत्य करने वाले महिमाको अपने स्वातन्त्र्य से अपने स्वरूपमें लीनकरके विश्वमयता तथा पराहन्तास्वरूप महाशक्तिमय अपने स्वरूपको छिपाकर अणुभाव (जीवभाव) को प्राप्त करता है अर्थात् स्वयंही रचायेहुये जालमें अपने आपको फंसाता है।

ऐसा होनेपर अपूर्णंमन्यतारूप (अपने आपको पूर्ण स्वरूपनमानना) आणवमल, नियतिनियततारूप (प्रकृतिकृत नियति के वश रहना) रूप मायीयमलसे और कर्मानुष्ठानता (अपने शुभप्राप्ति तथा अशुभनिवृत्ति के निमित्त कर्मकरना) रूप कार्ममलसे संवलित चित्तवाला महासमुद्रसे पृथक् हुआ और समुद्र के गुणों से विहीनहुआ बिन्दुजैसा अपनेआपको संकुचित प्रमाता (केवल अपने शरीरपरही अहन्ता रखनेवाला) मानकर जीवभाव को प्राप्त होता है जिससे संसाररूप भँवरोंमें फंसकर डूबती उगतीहुई जन्मरणदशाको अनुभव करता है।
अपने ही स्वातन्त्र्यसे समुद्र में बिन्दुजैसे परमशिवस्वरूप महाप्रकाशमें फिरभी प्रविष्टहोनेकी इच्छा होने पर पराहन्ता परामर्श (यह सारा संसार मेरी ही विभूतिहैं, मैं स्वातन्त्र हूँ जगत्सृष्टि आदिकरने को समर्थहूँ) के अभ्याससे संकुचित प्रमातृभाव तथा आणवआदिमल दूरकरके प्रशान्तसमुद्र के समान अपने शिवस्वरूपको फिर पाकर शिवीभावका आनन्द, जिसकानाम इस शिवाम्नायप्रक्रियामें जगत्आनन्द कहलाता है उसका अनुभव करता है। यही अन्यदर्शनों से विलक्षण सिद्धान्त शिवाम्नायसिद्धान्त कहलाता है।

यद्यपि यह रहस्य अनादिसिद्धि है किन्तु कलियुग के प्रादुर्भावसे शिवाम्नायवित् महर्षिजन कैलासपर्वत में स्थित कलापिग्रामआदि दुर्गम तथा अतिरहस्य स्थानोंमेंजाकर अदृष्टरहे जिससे शिवाम्नायका लोप होगया, । बौधआदिमतसे सिद्धहुआ

मोक्ष तात्त्विक मोक्ष नहोसकेगा कारणहै कि वह भेदवाद तथा अस्वतन्त्रवादहै ; इसकारण जगत् स्वातन्त्र्यलक्षणमोक्षसे वञ्चित नरहे यह विचारकर परमकरुणामय श्रीशंकरने कैलासपर्वतपर श्रीमत् श्रीकंठनाथकेरूपमें लोकोपकार के लिए अवतारलेकर परमतापस महर्षि दुर्वासाको सरहस्य शिवाम्नाय का उपदेश किया और उसको लोकमें प्रचारकरने की आज्ञा की,।

महर्षिदुर्वासाने योगबलसे मानसपुत्र अर्थात मनके संकल्प से पुत्र उत्पन्न किया जिसकानाम त्र्यम्बकादित्यहुआ उसको सरहस्य शिवाम्नायका उपदेश किया। ऐसीही सन्तान-शाखा अविच्छिन्न प्रवाहसे चलीआई जो अपने मानसपुत्रोंको उपदेशदेदेकर स्वयं आकाशमार्गसे अपने इष्टधाम शिवलोकको जातीरही जिसशाखासे चौदहसिद्ध इसी रीतिसे चलेआये, पन्द्रवां सिद्ध शिवाम्नायतथा उसकेरहस्योंका पूर्णज्ञाता होने परभी बहिर्मुख (संसार का अभिलाषी) होनेके कारण किसी ब्राह्मण कन्याकेसाथ विधिसे विवाहकरके गृहस्थधर्मपालने लगा उससे सङ्गमादित्यनामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो सङ्गमादित्य फिरते चलते कश्मीर आगया। उसका पुत्र वर्षादित्य, उसका पुत्र अरुणादित्य उसका पुत्र आनन्दादित्य उसका पुत्र सोमानन्द हुआ जिसने शिवदृष्टिनामक अनुपम शिवदर्शनग्रंथ रचा। उसका शिष्य श्रीमान उत्पलदेवाचार्य हुआ जिसने

श्रीशिवदृष्टिमतका अनुसरणकरके श्रीमदीश्वरप्रत्यभिज्ञा, नामक अपूर्व ग्रंथ रचा जो ग्रंथ अन्य दर्शनग्रंथ पढनेसे सहृदयोंके थोडेखिले हुये हृत्कमलोंको संपूर्णतया खिलाने लगा। ग्रंथकर्ताने स्वयमपि ग्रंथसमाप्तिपर उत्कंठहोकर घोषणा कीहै - (इति प्रकटितोमया सुघटएषमार्गो नवो महागुरूभिरुच्यतेस्म शिवदृष्टिशास्त्रे यथा)।

अर्थात्:- मैंने यह अपूर्वही मार्ग निकाला जो कि स्वातंत्र्य लक्षणपरमार्थ अतिसरल प्रक्रिया से जितलाया- इत्यादि, जो महागुरुसोमानन्दने शिवदृष्टिनामक शास्त्रमें वर्णनकियाहै ॥

श्रीमान उत्पलदेवाचार्यके शिष्य श्रीमानलक्ष्मणगुप्ताचार्यहुये उनके शिष्यरत्न श्रीपरात्रिंशिका, श्रीमदीश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, बृहती विमर्शिनी श्रीतंत्रालोकआदि, रहस्यतथा विज्ञानभरित ग्रंथोंके निर्माता श्रीमान्महामाहेश्वराचार्यवर्य श्रमदभिनवगुप्तस्वामिपादहुये, उनके शिष्य योगानन्दक्षेमराज्य आदिहुये जिनकी उपदेशपरंपरापरिचित श्रीमान ईश्वरस्वामिपादहुये जिन्होंने अपने भतीजे श्री श्रीरामस्वामिपादों को अच्छेप्रकारसे शिवज्ञान रहस्यों की शिक्षा की; जिनके हृदयमें वह सत्उपदेश लगकर बहुतही उपजाऊ भूमिपर अमृतवृष्टि जैसी हुई जिससे श्री श्रीरामस्वमिपाद साक्षात् शिव जैसेहुये जिनकी अवस्था में उससमयके लोगों ने, जोकि उन के सेवकबने, उत्तम शिवाश्रय तथा लोकोत्तर चमत्कारप्रद सिद्धियां तथा

परमोत्तम संपदायें उसके कृपाकटाक्षमात्रसे प्राप्तकी। उन्ही श्रीरामस्वामिपादके शिष्य श्रीस्वामिविद्याधरपाद हुये जिनका कुछ परचिय इसी श्रीविद्याधरस्तवमें दियाजायेगा।

यद्यपि यह शिवाम्नाय अन्यशास्त्रों की अपेक्षा अल्पकाल सेही अपूर्वशक्तिका विकास करताहै तथा परमशिव-समावेशदशाको उत्पन्न करनेवालाहै तौभी सिंहीके दूधकेभांति परमेश्वरशक्तिपात (अनुग्रह) से पवित्रित चितवालों कोही चरितार्थ बनालेताहै तदतिरिक्त मनुष्यों के हृदयमें लगा-हुआ संस्कार यद्यपि ऐसी उत्तमसिद्धि प्राप्तनही करताहै तौभी किसी अच्छी सीमातक भक्ति तथा सान्द्रहृदयता बडाताहै॥

सन्मार्गसे पतितहुआ विषयसंलग्न यह वर्तमानजगत क्षणभरभी इसशिवम्नायमें चित्तलगाकर अंशमात्र वा अंशांशमात्रही इस विभूति का सुख प्राप्तकरे इसविचारसे यह विद्याधरस्तव रचागया जिसमें यह दर्शायागया कि परमेश्वर अपने अटूट स्वातन्त्र्यसे जीवभाव को स्वीकार करताहै ऐसी अवस्थामें संसारीअवस्थाका अनुभव (अर्थात् सुख दुःख-रूपभोग अनुभव) करताहै फिर अपनेही स्वातन्त्र्यसे अपने आपको उद्धार करनेके निमित्त ईश्वरदशाके उचित पूर्णा-हन्ता रामर्श करनेसे परमशिवके साथ समुद्रमें बिन्दुजैसा

फिर मिलकर पूर्णस्वातन्त्र्यलक्षण शिवीभावको प्राप्तकरताहै ॥

जहांतकहोसका तहांतक इस स्तवकी प्रक्रिया अति-सरल तथा शिवाम्नायके प्रमाणों से युक्त श्रीविद्याधरस्तवके हेतुसे उनकेलिए अतिसुगम रचीगई जिन्होंने शास्त्रों का अभ्यास नहोनेके कारण निर्मलविचार प्राप्तनकियाहो, ऐसे होंनेपरभी इस विद्याधरस्तवके अध्ययन मनन करनेसे महाफल के अधिकारीहों। इति शिवम्

इति श्रीमान्माहेश्वराचार्यवर्य श्री हरभट्टशास्त्री काशिष्य नारायण जत्तूका सुपुत्र श्यामसुन्दरजतू कनिकदल (श्रीनगर)

जनता से प्रार्थनाः—

मुझे बहुतही आशाहै कि पाठक इस पुस्तकमें होनेवाले किसी दोषको देखकर क्षमा करेंगे क्योंकि मनुष्य निश्चयसे स्खलनधर्म वाला होता है ॥ और मैं पं० शिवजीजाडूके सुपुत्र पं० दामोदर जाडू औवरसेर, गणेशघाट, से बहुतही कृतज्ञहूँ कि उन्होंनेही इस कार्य में आर्थिक सहाय प्रदान करनेसे मुझको इसकार्य में प्रोत्साहितकिया।

—:o:—

Forward

चिदानन्देषणा ज्ञान क्रियावर्ष्मा शिवोवतात्।
लूतेवान्तस्थ विश्वौघ मीलनोन्मीलनक्षम: ॥

May Shiva, the Possessor of the five Shakhties, namely Consciousness, Bliss, Will, Knowledge and Action, who, like a spider weaves this web of a Universe out of himself and again withdraws it unto Himself, protect us, so that we may not remain entirely engrossed in pleasures of the senses and the flesh, but may be uplifted out of these limitations, and attain the state of super-Consciousness: thus realising our true self: and, so that we may be enabled to merge the outspread Universe, despite its diversity, into the boundless ocean of Self and attain the supreme state of Consciousness and Bliss.

Consciousness, Bliss, Will, Action and Knowledge,——complete with these five Shakhties and All-Powerful is the Parma Shiva-who is also known as Anuttara-Shiva. From Shiva Tattava to Prithvi Tattava, He bears within Himself the entire Universe, as also the entire range of sound from the letter अ to the letter क्ष, indistinguishable from Himself, just as the ocean bears within itself innumerable kinds of waves, drops, spray, etc., and also just as the beautiful and veriegated hues of a peacock's feathers are contained in and lie concealed within its egg. Bearing all this, he is ever in the state of

Supreme Bliss. This very Parma-Shiva brings into existence the multitidinous creation from His Shiva Tattava to the Prithvi Tattava and the whole gamut of sounds from अ to क्ष, without the aid of any external agency, and thus by Himself alone, He creates this diverse Universe. One intending to make any article requires necessary material, just as a painter requires paper to paint on, a brush for painting and colours to make the picture. In the absence of these requisites the making of a picture becomes impossible. The Jiva is governed by tre forces of Destiny, and requires the help of other agencies to create something whereas Ishwara and His Will are independent and unalterable. His Will can never be thwarted this is due to His independent existence.

A Jiva (living being) does not use any other material except his thought to build up his imaginary city, and takes pleasure in this mental imagery, sometimes shutting off the picture from his mind, sometimes retaining it in his memory, and sometimes consigning it to oblivion by dashing it down to the bottom of his mental ocean, and thereafter never brings it back to his memory. Being of a limited capacity, the mental imagery of a Jiva ceases soon after, and no other living being except the Jiva concerned can see or feel it. The volition of Ishwara (God) is true, so much so that His desire brings into existence this

illimitable Universe with its earths, oceans, skies, suns, moons, the constellations and Heavens, etc. Although this Universe is illimitable in expanse, and is composed of an infinite variety of objects, each different in equality and shape from the other yet the whole Universe is nothing but Consciousness, and it is like a wave from that ocean of Bliss——Parma Shiva. WHY HAS THIS WAVE OF BLISS MANIFESTED ITSELF IN THE SHAPE OF THIS UNIVERSE? It is due to the overflow and exuberance of Bliss,——that is Ishwara fills Himself to overflowing with His bubbling and gushing Bliss, and giving it a tangible form, manifests it as the Universe, just as the waters of a spring, bubbling and swirling, fill the cavity of the spring itself, and then flowing through the outlet, rush down in the form of a river or a stream; or just as the ocean, which consists of nothing but water and is actually a boundless and a huge reservoir of water, manifests itself in the form of waves, mighty and small, drops and particles of spray, as also in the form of frost, fog, rain, snow and hailstone, which all are but various forms of water, and actually appear quite different and distinct from it. Similarly, the sportive Parma-Shiva manifests Himself in the form of this concrete and diverse Universe like the unmanifested hues of a peacocks feathers lying dormant in the egg. Creation, Maintenance, Destruction, Pidana and Anugraha, —— these are the five kinds of actions which are also called the five Shakties

or Panch krityas (Powers). पञ्चकृत्य The meaning of the first three is quite obvious. idana means retaining of an impression in the consciousness as a Sanskara (literally Sanskara is an impression in the sub-conscious). To merge even the Sanskara into the self, so that it does not emerge into the memory is called Anugraha. The Parma-Shiva may be liked to a majestic King. The King by His own desire leaves His throne to go a hunting through forests, full of dust and thorns, in order to chase game or catch fish, moving along through dusty paths and muddy quagmire and besmeared with dust and mud, presents a loathsome sight to a stranger as an ordinary hunter of no significance. But He is still the King with all His glory and majesty, and again cleansing Himself of all the dirt and dressing Himself in His kingly robes is seen as the King on His royal throne. Similarly Parma-Shiva, ever busy in the five kinds of activities (पञ्चकृत्यकरणशील) like a spider, weaves by His own sportive activity, this web of the Universe, and in due course, destroys it also. By merging these activities within Himself, and, forgetting, as it were, that He is the Universe and its Creator, appears as a Jiva and thus entices Himself in the web woven by Himself When this happens, the Supreme Essence, (अपूर्णम्मन्यतारूप) considering Himself incomplete (आनवमल) subject to the laws of nature and also one who must act for His emancipation is reduced to the position of a drop that has

been separated from the ocean and divested of its qualities. Thus considering himself to be a limited Creator, controlling his body alone, he becomes the Jiva of limited capacity and is thus caught in the whirlpool of worldly life and sinking and rising, undergoes the cycle of births and deaths. Being thus reduced to the position of a drop, he again has a desire to regain his Effulgence as Parma-Shiva, and then by concentration on his real nature as the Supreme Creator of the Universe, he attains the Supreme State by removing the self-imposed limitations, and thus attains again to Shiva Consciousness, —— the ocean of Bliss.

This is the teaching of the Shiva Texts, and it is called Shivamnai Sidhanta. Although this secret teaching was known from the beginning of the Creation, with the commencement of Kaliyuga, it has gone into oblivion because the great sages have kept themselves hidden from human eyes on the Kailash mountain at secret places like Kalapigram etc. The Mokhsha (Deliverance) provided by Budhism and the like faiths, not being Tattavic Mokhsha is nothing but a return to Materialism and bondage. That the world may not be deprived of this way to liberation Lord Shankara for the good of all creatures, incarnated Himself as Shree Kanthanatha, and imparted this secret teaching of Shivamnay to that supreme ascetic and sage, Durvasa, and instructed him to disseminate among the people of the world. The sage Durvasa, by

his yogic powers, created a mental son, Tryambhakaditya, whom he initiated into Shivamnay. And thence onward, an unbroken chain of fourteen Siddhas (realised souls) spread this teaching in this world. The fifteenth Sidha, Sangamaditya, though quite conversant with Shiva philosophy, was at the same time, worldly, and lived the life of a house-holder. He married a Brahmin girl. This very Sangamaditya came to Kasmir. His son was Varshaditya, and his grandson Arunaditya, whose son was Anandaditya and Somananda. This last named sage is the author of that wonderful book " Shivadrishti." His disciple was the great teacher, Utpalacharya, the author of that monumental work on Shaiva philosophy " Ishwara pratibhijnya", a study which blossoms more completely the lotus of the readers heart than any other book on his subject. The author has concluded the book with the remark.-

(इति प्रकटितो मया सुघट एष मार्गो नवो महागुरुभिरु-
क्यतंस्म शिवदृष्टिशास्त्रे यथा - इति,)

" I have composed this Shastra which reveals an easy path to Liberation as has been mentioned by the great teacher' Somananda in his Shiva Darshan Shastra. The disciple of Sh. e Utpala Charya was Shree Lachman Guptacharya 'and his brilliant disciple was the great Abhinavgupta he Lord of Yogis and the reputed commentator of Ishwara Paratibhijnya' Brahati Vimarshan and the author of Tantraloka and Paratrimshika

all of which are full of most secret and Scientific knowledge. His disciples were hree Yogananda and Shree Khemraja. The latter is the commentator on Tantraloks. A great repository of this traditional teaching was Shree Ishwarapada who imparted this secret teaching to his nephew, Shree Ramaswami Pada. The latter eagerly imbibed this learning which acted as nectar and S. Ramaswami pada transformed Shree Ramaswami pada in to prevaritable Shiva. Through his grace many a man of his time attained to the knowledge of 'Shivamnaya and acquired diverse sidhis and super--normal powers. This fact is born out not only by his disciples but by many others as well. One of the disciples of Shree Ram was Shree Vidhyadharpada about whose life some facts will be given in this booklet, " Vidhyadhar " All though this Shivamnaya Shastrs bestows wonderfull Yogic Shakhties (powers) more quickly than other Shastras and leads to oneness with Shiva yet like the milk of a lioness, it arouses the Shakhties, and bestows these powers on men of character and self-discipline. In the case of ordinary men, although this teaching does not lead to such marvellous powers, still it uplifts them and pours the nectar of devotion into their hearts to a certain extent.

In order that the present world which has far deviated from the true path and is engrossed in sensuous pleasures may be uplifted and may attain to a state of bliss by concentrating even for an instant on Shivamnay, this

Vidhyadharastava has been composed. It has been explained in this booklet that Parmashiva by his own unalterable desire attains to the condition of shiva, and in this condition experiences the world and then again by his own desire, regains his own status of Ishwara, merges into Shiva as does a drop into the infinite ocean and becomes like unto Shiva himself, self-existent and liberated.

As far as possible, the text of this Shree Vidhyadharastava has been kept extremely simple for the benefit of those readers who are not quite conversant with the Shastras and who have not yet been able to grasp the essence of this teaching.

Srinagar, Kashmir,
1st. march 1953.

Shyamsunder Jatu
disciple of Maha Acharya
Shree Harbhatta Shastri

अथ विद्याधरस्तवः, प्रारभ्यते ।

श्रीशिवा जयति

तत्त्वोत्तीर्णो तुलनिजचमत्कारपूर्णो ह्यनन्यापेक्षीस्वैरी
कचनपरमो भैरवोबोधभानुः । मलिन्यान्ध्यं त्रिविध
मखिलंनाशयित्वा हृद्‌ज्ब संकोचंनः स्वकरनिकरणो-
दितः सन्धुनोतु ॥१॥

(तत्त्वोतीर्णः) – शिवतत्वसे पृथिवीतत्त्वतक होनेवाले विश्वसे उत्तीर्णहोनेपरभी जो (अतुलनिजचमत्कारपूर्णः) - असीम अपने विश्वमयतारूप चमत्कारसे पूर्णहै जिस पूर्णतासे विश्वोत्तीर्ण होनेपरभी विश्वकी रचना करनेमें एवं रचित्त विश्वके लयआदि करनेमें कुशलहै इसीकारण जो (अनन्या पक्षी) विश्वप्रपञ्चकी रचना करनेपर किसीकी सहायता नही चाहताहै, तथा जो (स्वैरी) स्वतन्त्र है अर्थात् जिसकी इच्छाका निरोध कोईभी नही करसकताहै, और (कचन परमः) चमकनाही उत्कृष्टगुणजिसकाहै अर्थात् विश्वरूप नानाप्रकारसे प्रकाशित होनाही जिसका महत्व है अन्यथा अप्रकाश होनेसे नकिसी को जानसकता नकोई इसको जानसकता (भैरवः) भीः संसारसे उत्पन्नहुआ कठिनभय, उसभयसे जो उत्पन्न हुआहै रव-रोनेकाशब्द ऐसेशब्दवालों के हृदयमें स्फुरित हुआ अर्थात भेदप्रथात्मक संसारके त्रासको नाशकरनेके तत्पर लगेहुये

योगियोंके हृदयमें उल्लसितहुआ, अथवा सूर्यादि नक्षत्रोंको जो उदय तथा अस्तरूपसे चकराताहै उसको काल कहाजाता है उसकालको जो परास्त करताहै उसको भैरव कहाजाताहै आशय यह है कि पूर्णाहन्तापरामर्शशाली महर्षि योगेश्वर कालकोभी चिन्मयहोनेके कारण अपनेसे अभिन्न परामर्श करते हैं जिसकारण उन्हें कालकृत गुण कदापि प्रभावित नहीं करसकते हैं अतः वे कालकोभी ग्रास करनेवाले कहेजाते हैं ऐसा भक्तोंके कालकोभी घस्मर शील (बोधभानुः) जडसे विलक्षणगुणवाला, सर्वदास्फुरणशीलचित्सूर्य, [जड, ज्ञानशून्य होनेके कारण परतन्त्र है स्पन्दमात्रकरने की शक्ति नहीरखता उससेविलक्षण (चित्, ज्ञानरूप तथा सर्वतंत्रस्वतंत्रहै] ऐसा पूर्णा-हन्तापरामर्शमय परमशिवनामवाला चित्सूर्य (उदितःसन्) उदयकरताहुआ अर्थात् विकसित हुआ [मालिन्यान्ध्यं त्रिविध-मखिलं] तीन प्रकार का सारा अन्धकार जिसअन्धकारको आणव, मायीय, और कार्मरूपतीनमल ही अपनास्वरूपहैं जिसका वर्णन उपोद्घातमें दर्शायाहै उसको [स्वकरनिकरेण-नाशयित्वा] अपने बोधरूप किरणोंसे मिटाकर [नः] हमारा [जोहम इस त्रिविधमलको मिटनेके लिए ईश्वरके शरण हुयेहैं] [हृदब्जसंकोचं] परिमित प्रमातृलक्षण, अर्थात् मैं केवल अपनाही मांसादिसे बनाहुआ शरीरमात्र हूँ और सबकुछ मुझसे पृथक्है ऐसा अपने हृतकमल का संकोच (धनोतु) दूरकरे ॥१॥

विद्याधरस्तवः ।

1. Despite being above the Cosmos, comprising the elements from the Shiva-Tattva to Prithivi-Tattva, who is yet full of the infinite marvel of His profoundness therein, whereby, being though apart from it, He is competent to create and obliterate the Universe alike, and due to that requires no help in the creation thereof; Who is entirely free, that is whose wish nothing can oppose, and Whose characteristic and greatness is His manifestation in manifold different forms and aspects (as, far from being quiescent He is fully conscious, Who otherwise if जड dormant would neither know anything nor would anything else know him); who reflects in the bosom of Yogis—— perturbed by the deverse world; to whom (yogis) through their vanished sense so discrimination due to His reflection, all the cosmos appears their self and ecstasy, whereby even the destiny appears to them their self and rapture —— thus getting fearless of it, (in other words, the Maha-Yogishwaras —— feeling vividly the entire cosmos as their self, through their apperception conceive the Destiny merged in their self, and are due to that, never influenced by the attributes thereof whereby they are described to overwhelm it); who occludes the Destiny which regulates the risings and settings of the constellations and is thus described to engulf it. May that risen supreme Sun Parma-Shiva, who is full of super-consciousness "Purna-ahanta" (self,

the entire cosmos) Who, for His devotees engulfs the Destiny even, remove our darkness constituting the ignorance of three kinds, by His rays of super-knowledge, and ward off the sense of inferiority and diffidence from us, for we, with our minds closed like a lotus in drak, have taken His refuge, like the same (lotus) that awaits the Sun and consequently opens and blooms with the touch of its rays.

या व्यक्तेःप्राक्किलपरमहा मन्त्रभूमिःपराख्या,
पश्यन्तीतामुपगतवती द्योतयत्यर्थजातम् ।
भेदामर्शारचनकुशला मध्यमा वैखरीया
व्यक्तासंविल्लसतुहृदिनः चोभतूलाग्निहेतिः ॥२॥

(या, जो परमैश्वर्यमयी संविद्भगवती [व्यक्तेःप्राक्] पश्यन्तीआदि अवस्थासेप्रथम (परमहामन्त्रभूमिःपराख्या, अहम्-इति जो पूर्णाहन्तामय महामन्त्र है उसमहामन्त्रकी आधार बनी हुईहै जो महामन्त्र अनन्तशक्तियोंका मूलकारणहै जिसकानाम परा शक्ति भगवतीहै, जिसकेस्वरूपमें पश्यन्ती से वैखरीतकसारा वाच्यवाचकात्मक अर्थात् पदार्थ और शब्दरूप जगत् दूधमें घी केसमान सामरस्यभावसे मिलजुलकर ठहराहुआहै, क्योंकि उसीसे पश्यन्तीआदि अवस्थाओंका उद्भव होजाताहै नहीं

ता पश्यन्तीआदि अवस्थाओं का उससे भिन्न होनेपर जडता होजातीहै जिससे उनकी प्रतिष्ठाही नहोसकती (पश्यन्ती-तामुपगतवती द्योतयन्त्यर्थजातम्) वही परासंविद्भगवती जिसमें साराही भावसमूह जोकि उसके स्वरूपसे अभिन्नहै उसको भेदसे जितलानेकी इच्छावाली पश्यन्तीनामा होजातीहै। (भेदामर्शारचनकुशला) वही संविद्भगवती अपने स्वातंत्र्यके महिमासे अपने स्वरूपसे अभिन्न शब्दरूप तथा अर्थरूप जगत् को भेदसे प्रकटानेपर (मध्यमा) स्मृतिका विषय बनेहुये पदार्थजातको भेदसे परामर्श करतीहुई मध्यमानामवाली हो जातीहै। (वैखरी वाऽव्यक्ता) वही पदार्थरूपजगत् अपनीही इच्छासे तत्तदाकार असंख्यप्रकार भिन्न २ स्वरूपसे दृश्यमान रचानेवाली, वैखरीनामवालीसंवित परमशिवसे अभिन्न अर्थात् परमशिवस्वरूपा सविद्भगवती, (क्षोभतुलाग्रिहेतिः) (अन्दरसे धरेहुये रत्नसमूहवाले निस्पन्द जलमयसमुद्रसे उठेहुये छोटे से छोटे वा बडेसे बडे तरङ्ग जोतङ्ग समुद्रसे अभिन्न हैं उनकातरङ्गरूपमें इसप्रकार उठना समुद्रका क्षोभ कहलाताहै इसी प्रकार समस्तभावराशिके खान परमशिवका अपनेही स्वरूप शिवतत्त्वसे पृथिवीतत्त्व तकका जगद्रूपसे फैलना क्षोभ कहलाताहै) उहही क्षोभ अर्थात् भेदप्रथा (जो भदप्रथा पूर्णस्वरूपसे गिराकर संसार के कुयेमें लगाने

वाली है) जिस पराशक्ति वा पराविद्याके परामर्शसे अग्निमें रूईजैसा भस्म होजाता है अर्थात् अतिकठिन भेद प्रथात्मक विश्व जोकि ब्रह्मादि देवोंसेभी नष्ट नहींहोसकता वही विश्व-प्रपञ्च अतिशीघ्रही जिसके परामर्शसे नष्टहोजाता है वही परसंविन्नवती (लसतु हृदिनः) हमारे हृदय में विकसित हो जिससे हम पूर्णपरामर्शशाली भेदको ग्रास करके पूर्णआनन्द का पात्र बनजायेंगे ॥२॥

2. Samvit Bhagwati —— Who is full of great ecstasy and primarily, before the phenomena-like Pashyanti, is the base of the great Mantra "I" (अहम्) full of Purna Ahanata (state of perceiving the entire Universe as "Self") which is the root of limitless powers; in Whom the entire Universe in the shape of a word and substance from "Pashyanti" to Vaikheri" exists, mingled so evenly and in such a close harmony, as is butter in milk, and as such Who is known as "Para-Shakhti"; for, from the same phenomena, like Pashyanti, originate, which would otherwise if as under, become passive and unestablished. The same Para Samvit Bhagwati, in Whom all the matter rests conformally, when contemplating to exhibit that (cosmos), effecting apparently a change,—— is called Pashyanti. Para-Samvit Bhagwati —— On unfolding the Universe as

a word and substance which is indistinguishable from Her, assuming thus a comparative change, by the glory of Her Super - liberty, establishes the substantial world which is the outcome of Her fancy is then known as "Madhima". And Who, on creating with Her fancy the organic world that presents itself of innumerable different objects and aspects is known as "Vaikheri". May that Samvit Bhagwati Who, far from being different from Parmashiva is Herself the same (The entire cosmos, which other than being something different, is our inner "self" as a matter of fact, and which, due to our difference finding faulty judgment, appears to us diverse causing us agitation in the form of sorrow and joy, which but vanishes like cotton in fire, through the cognition of Para Samvit Bhagwati. Or The most comlpex diverse Universe which cannot be nullified by the gods like Brahma even, but is annihilated in no time due to Her condescension) reflects in our minds, removing our diverse apprehensions, whereby achieving to super-apperception, we may become worthy of the Bliss.

श्री श्रीकण्ठा दनुपमफला याहिसन्तानशाखा–
याता तत्र समाधिगतवाञ्छैशवेशाक्तिपातात् ।
श्रीरामाख्यं गुरुमथच तत्सेवयावाप्त धीर्य

स्तं श्रीविद्याधर गुरुवरं स्वात्मरामं नमामि ॥३॥

उपोद्घातमें जिसका वर्णन आयाहै उसी (श्रीश्रीकंठात्) श्रीमान श्रीकंठनाथसे जो (अनुपमफला) अतिउत्तम फल उतपन्न करनेवाली (याहि सन्तानशाखायाता) सन्ताननामक कल्पवृक्षकी उत्तम फल उत्पन्नकरनेवाली जो शाखाहै जिसके फलसेवन करनेसे मरणधर्मवाला मनुष्यभी अमर तथा आप्त-काम होजाता है इसी प्रकार जो सन्तानशाखा अर्थात् शिष्यभूतसंतानपरंपरा उत्तम उपदेश प्राप्तकरके शाक्तस्फार अर्थात् शक्तिविकासरूप समृद्धिवाली चलीआईहै (तस्या) उस शाखारूप परंपरामेंसे जो श्रीविद्याधरस्वामी नामवाला योगेश्वर (शैशवे, बालावस्थामें [शक्तिपातात्] ईश्वरानुग्रहसे (अरामा-ख्यंगुरुम्) (परमपूज्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र योगेश्वरवर्य श्रीरामस्वा-मिपाद ईश्वरके कृपापात्र होनेके कारण सत्यसंकल्प तथा असाध्यतमकार्य इच्छामात्रसेही सिद्ध करनेके लिए समर्थ थे यह केवल उनके चरणकमल के रसिक शिष्यही नहीं अपिच साधारण जनसमुदायभी मुक्तकंठ होकर उनकीकीर्ति का गायन करताहै, ऐसे दिव्यसंपदाके महानिधि गुरुवर्यको (समधिगातवान्) प्राप्त किया, (अथच) और उस परमोत्तम गुरुपाद को प्राप्तकरके (तत्सेवया) शरीर वाणी, मनसे उस परमदैशिक की सेवा करने से (अवाप्त धीः) प्राप्तवि ये

हुये ज्ञानमय दिव्यसमृद्धिवाला (यः) जोथा (तं श्रीविद्याधर गुरुवरं स्वात्मरामं नमामि) श्रीविद्या, उत्तम विद्या अर्थात् पराविद्या उसको धारण करनेवाले तथा ईश्वरशक्तिपातरूप निजलाभसे पूर्णहोने के कारण अपनेस्वरूपमें रमणकरनेवाले स्वात्मराम श्रीस्वामिविद्याधरपाद नामक सतुगुरु को सिरझुका कर उनका ऐश्वर्य और उनका स्वरूप स्मरण करताहुआ मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३॥

3. The branch (of Shaivists) that began with Shri Kanthanatha, producing auspicious fruit in the manner of successors, like the divine tree "Kalpa" (the fruit of which makes mortal man immortal and fulfils all his wishes) has continued ever since, accomplish great spritual powers. By kindness of Almighty Yogeshwara Vidhyadhara of the same (branch of Shaivists) found his preceptor in the super-free, exalted Yogeshwara Shri Rama Swami (who due to the condescension of the Lord accomplished super-natural objects through his mere wish; which besides being known to his disciple is also borne out by the common people too) in his boyhood, where he was enabled to know his true self. Serving him (Shri Swami Ram with his person, mind and voice, he was blessed with divine glory and grace, and became Shri Vidhyadhar (gifted

with Shri Vidhya, knowledge of Para Shakhti) in the real sense of the term. Before such a preceptor "Shri Vidhyadhar", who devoid ot self-conceit was enjoying himself with the great light of the cognition of the self I am bowing.

देहाद्यात्मेत्यखिलजगता मान्द्यपूर्णोविवद्-
स्तुच्छोच्छेद्यो यदपिचशिवःशास्तिचैतन्यमात्मा ॥
आम्रश्यैवं विपिनमगम द्रागजालस्याछित्यै तं श्री ॥४

(देहाद्यात्म) देहही आत्माहै प्राणही आत्माहै बुद्धि ही आत्माहै (इति) (अखिलजगता मान्द्यपूर्णो विवादः) ऐसासब मनुष्योंका अन्धकारपूर्णविवाद अर्थात असत् पदार्थपर सत्का निश्चय होना (तुच्छः) निसार विवादहै इसकारण (उच्छेद्यः) ऐसे सिद्धान्तका समूलनाश करना आवश्यकहै ऐसा होनेसे ही सत्यमार्ग प्रकट होजायेगा. मैं ही ऐसानही कहताहूँ (यदपिच शिवःशास्ति चैतन्यमात्मा) प्रत्युत भगवान श्रीपरमशिव भी शिवसूत्रोंमें ऐसे आज्ञा करताहै (चैतन्यमात्मा शि-सू-१ उ-१) अर्थात चेतनके न होनेपर, देहादिक, जडहोने के कारण अपने आप की सिद्धि नहीं करसकता है तोअन्य की सिद्धि करनेकी कथाही वार्ता है चेतन ही अपनी तथा

अन्यकी सिद्धि करनेपर स्वतन्त्रहै तथा समर्थ है, इसी आशय से भगवान शंकरने चैतन्यशब्द, प्रयोग में लाया है अर्थात चेतनका चेतनपन ऐसे भाववाचक शब्दसे चेतनका स्वतन्त्रपन जितलाया है, इसी आशय का अनुसरण करतेहुये श्रीमान अभिनवगुप्तपादने तंत्रालोकमें दर्शायाहै कि, शिवसूत्रों में जो चैतन्यं- इसभावाचक शब्दसे आत्माका लक्षणजितलाता है उससे चेतनका स्वातन्त्र्यही दर्शायागयाहै एवंशक्तिसूत्रों मेंभी (चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु सू १) इस सूत्रमें आत्मा का पूर्ण स्वातन्त्र्य दर्शाता है जो जडसे विलक्षणहै। (आमृश्यैवं) ऐसेही पूर्वोक्तप्रकार से सुविचारकरके (विपिनमगम द्रागजाल-स्यछित्यै) जो स्वामिपाद पुत्रकलत्रधनादिका रागरूप जाल मिटानेके लिए वनमें चलेगए, तं श्री० ॥४॥

4. To think of the perishable items like body, breath and talent in terms of self is an insignificant vulgar ideals, and it is therefore essential to put a radical end to such ideals, for the way to the Truth will become clear thereby. (I only do not speak like that, Lord Parma Shiva *has laid down the precept* चैतन्यमात्मा-सू १-उ १. That is what is unconscious cannot know its self, not to speak of inducing others to know theirs. Due to knowing his self, and inducing others to do the same,

one who is conscious is powerful and free. For this reason, Shankar has used the word चैतन्य (consciousness) that is consciousness of the one who is conscious. Thus by the abstract noun चैतन्य (consciousness) the free state of what is conscious has been shown. Following the same, Shri Abhinavgupta has pointed out in "Tantraloka" that Shiva Sutra (which is intriduced with the word चैतन्य (consciousness) proves the free state of what is conscious. Again, in "Shakhti Sutras", "Atma" (soul) has been shown as fully free and is thus far from matter. As such, forming the worthy idea, and giving up his attachment in worldly temptations like riches, wife and sons, he (Swami Vidhyadhar) retired to woods.

कार्कोटाहेर्गहनभवने हिंस्रजीवैःपरीते
शाक्तस्फारातिशयविमलो आतसंविद्विकासः ।
ऋद्धाहिंस्रागुरुवरधिया मस्तकैर्यप्रणोमुस्तं श्री०॥५॥

(कार्कोटाहेः, कार्कोट नामवाला आठो नागराजों में प्रसिद्ध नागराज है, उसके (गहनभवने, कठिन कांटे आदिसे भरेहुये विषममार्ग वाले, तथा असंख्य वृक्षोंसे भराहुआ होनेके कारण मन्दप्रकाश वाले जंगलरूप निवासमें, (कार्कोटनाग नामवाला

विद्याधरस्तवः

ज़ंगल कश्मीरमें मार्तण्डक्षेत्रसे पूर्वदिशामें चारमीलसे पांच मीलके दूर पर है) ,हिंस्रजीवैः परीते, जिसमें हिंसाशील शेर-रीछ आदि तथा चौरआदि रहतेहैं उसी स्थानपर श्री स्वमिपाद रहने लगे वहाँही उनको ,शाक्तस्फ़ारात्तिशयविमलो जातसंविद्विकासः, परमेश्वर के अनुग्रहसे अन्तःकरण अति-निर्मलहुये अर्थात यह मेरा है यह पराया है इसप्रकारका रागद्वेशपूर्ण भेद उन्हें समाप्त हुआ तथा यह संविद्विकासहुआ और यह परामर्श बडता रहा कि यह सारा विश्व मेरीही विभूति है, इसकारण उनको ,क्रुद्धा हिंस्राः, क्रोधी तथा हिंसाशील जीव ,गुरुवर धिया, यह हमारा गुरु है ऐसामानकर ,मस्तकैर्य प्रणेमुः, अपने सिर नीचे करके जिनको प्रणाम करने लगे, तंश्री० ॥५॥ ,प्रोक्त स्वामिपादों के सामने बहुतवार हिंसाशील जीव रहाकरते थे जो कि किसी का क्षोभ नहीं उठाते थे यह उनके शिष्य कहाकरतेहैं, ईश्वरकीआराधना तत्पर पुरुषों को भेदभाव मिटकर सारा संसार अपनाही स्वरूप बनजाताहै इसकारण उनका शत्रु कोइभी नहोसकता उसके विपरीत मनुष्योंको सर्वतः भयहुआ करताहै। श्री भा० ११ स्क श्लो भयंद्वितीयाभिनिवेशतः स्या दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः। तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥आशय इसका यहहै- भयसर्वदा दूसरेसे उत्पन्न

होताहै दूसरा-अर्थात् भेद, ईश्वरसे विमुख कोही रहताहै दोनों ही-भेद तथा ईश्वरसे विमुख रहना उसी ईश्वरकी मायासे उत्पन्न होतेहैं जिससे मनुष्य संसार के घट यन्त्रमें फंसजाता है इसकरण उसी ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिये माया से नही प्रयुत सत्यभक्तिसे, किन्तु उसकी शिक्षा गुरुसे ही प्राप्त करनी चाहिये ॥५॥

5. Forest Karkuta (named after Karkutnag, the well known Snake king) is situated at a distance of some five miles towards the east of Martand area in Kashmir. The tracks of the forest are thorny and difficult due to dense overgrowth and luxuriant trees, it is often dark. It is inhabited by wild beasts like leopards and panthers and also by thieves. Shri Swami Vidbyadharji retired to this remote place and attained there spiritual powers as the condescension of the Lord, whereby his powers expanded and became clean minded (that is diverse apprehension in the way that "it is mine" " it belongs to others" lost its hold on him). His super-appreciation (conception that all the Universe is my rapture) developed steadily by which even the wild beasts bowed before him, revering him as their preceptor (for many times the wild beasts used to sit near him and never terrorised anybody there; that is

why they are described as his disciples). They who are occupied in the devotion of the Lord are free from the sense of discrimination, and all the Universe appears to them their own self, and due to that, nothing becomes their enemy. On the other hand, the humans and other living beings are always in fear of all sorts. In the eleventh chapter of Shrimad Bhagwat, it is pointed out that one viewing his surroundings differently from his self is always subject to fear (that is fear is always apprehended from others but to devotees of the Lord who have nothing other than their self find everything in the shape of their self and are thus free from any fear). On the contrary, one who is far from it is subject to constant fear and peril. We should therefore be devoted to God in accordance with the advice of our preceptors.

यस्याभूम्ना चकित चकितोभूदयं मर्त्यवर्गः
पादौस्पृष्टुं द्रुतमुपयथौ प्रावृणोच्चाश्रमंतम् ।
नैतच्छर्मेत्यमरविवरं प्रापयः शैवधर्मा तंश्री० ॥६ ॥

(अयं मर्त्यवर्गः) यह मनुष्यवर्ग (यस्याऽऽभूम्ना) जिस योगेश्वर के पूर्ववर्णित तपोमहिमासे (चकितचकितोऽभूत्) बहुतही प्रभावित हुआ, तथा आश्चर्य करता हुआ [द्रुतम्] विलम्बके विनाही

विद्याधरस्तवः।

(पादौस्पृष्टुम्) उनके चरण कमलोंका स्पर्श करनेके लिए (उपययौ) उनके पास चलागया, (इस विचारसे कि निश्चय से हम उनके पादोंका स्पर्श करनेसे पापोंसे मुक्तहोजायेंगे, (प्रावृणोच्चाश्रमंतम्) उसजनसमुदायके एकत्र होनेसे उह आश्रम भरगया. (नैतच्छर्म) योगीके लिए जनसमूह से उत्पन्न हुआ क्षोभ विघ्नहीहै यह विचारकर और आश्रमसे निकलकर (अमरगुह्विवरं) अमरनाथनामक अमृतेश्वरकी गुफा पर (प्रापयः शैवधर्मा) जिसको शिवज्ञानही इष्ट और आचरणथा जोऐसा योगेश्वर एकान्त सेवनके लिए वहां पहुँच गया तं श्री ॥६॥

6. All the humanity was surprised and inspired by the penance of the aforesaid Yogeshwar (Shri Vidhyadharji) and without any delay went forward to touch his feet—— to bow humbly at his feet with the idea of getting deliverance. The herimitage remained packed with people continuously. On being thus disturbed (since confusion caused by a mob is a hindrance for a Yogi) he took his shelter in the cave of Shri Amarnathji, as for a Yogi like him, cognition of Shiva was the only ambition and aim of his life.

आश्यानोयं चितिरसम : सर्वतो भावत्रगों

नानरूपं श्रयतिद्रवता मागतोऽव्यक्ततांच।
इत्यानीतः स्वगृहममरे शेनयः शिक्षणार्थं तं श्री० ॥७

(अयं भाववर्गः) प्रत्यक्षविषय जो सारा पदार्थवर्ग है वह (सर्वतः) प्रत्येकप्रकारसे (चितिरसमयः) चितरसही केवल (आश्यानः) भेदसे परामर्शकरनेपर, जैसे समुद्रसे प्रथक् हुआ जलप्रवाह, वर्फ-कोरा आदि कठिनरूप पाताहै एवं (नानारूपं श्रयति) नानाप्रकार जडचेतनरूप जगतप्रपञ्चस्वरूप धारण करताहै, (द्रवतामागतोऽव्यक्ततांच) पूर्णप्रमातृभाव अर्थात् परमार्थदृष्टिसे संविन्मय परामर्श किया हुआ चित्सूर्य किरणों से पिगला हुआ फिरभी चिद्रसमय होकर समुद्रमेंपानी का प्रवाह जैसा समुद्रसे अभिन्न स्वरूप होताहुआ अव्यक्त भाव कोप्राप्त करता है, इति, यहही रहस्यपूर्ण शिवम्नायसिद्धान्त सीखनेके लिए (अमरेशेन) अमृतेश्वर जिसका नामान्तर है उसी परमशिवने, यः, जो योगेश्वर (स्वगृहं) अमरनाथगुफा नामक अपने स्थानपर जहां रसलिंग अमाकलानामक अमृत-बिन्दु सत्तारवां कलात्मक, बडतेहुये चन्द्रमाके समान प्रतिदिन कलावृद्धिसे और षोड़श कलात्मक पुष्टि पाकर वहुतही कठिन तथा सर्वजगत के दर्शनके योग्य ऊंची लिंगाकार मूर्ति को प्राप्त करता है फिर प्रतिदिन क्षीण होनेवाले चन्द्रमाके प्रकार

विद्याधरस्तवः ।

कलाओं का ह्रास (क्षीनता) पाकर द्रवितहुआ सतारहवीं कलारूप अमाकलानमक्त बिन्दु ही शेष रहकर अव्यक्त हो जाताहै जिसे प्रत्तक्षदृष्टान्त वर्तमानसमय में भी विद्यमान है कि ईश्वर (परमशिव) अपने चिद्रस सेही भेददशामें सारी भावराशि को रचाताहै तथा अभेददशामें उसको अपनीशक्ति के साथ सामरस्य से लयकरताहै इसपर 'शास्त्र भी प्रमाण है [एताकला बिलीयन्ते ततःसप्तदशी कलाअमाकलेतिविख्याता] अर्थात् यह सारी कलाए चन्द्रकलाओं के प्रेकार लीनहो जातीहैं फिर सतारहवीं कला जिसका नाम अमाकलाहै शेष रहजाजाती है और भी [तस्मै शक्तिकला सफार साफ लाय रस्यैक हेतुवेनमः] उसी शंकर को नमस्कार हो जो शक्ति कला (विश्वप्रपंचके) विकास और लयकरने का कारण है अर्थात चिच्छक्तिरसकेस्फार [फैलाव] से जगत् विस्तृत बनाताहै बनाकर भी अपनी सत्ता में समरसभावसे लीन करता है जैसाकि मोर के अण्डे में रसरूपही मोर विद्यमन है जो विचित्रवर्ण मोर उसी रससे समय आनेपर निकल सकताहै [इति] इसी दृष्टान्त से यह योगेश्वरभी इस रहस्य को जानलेवे इसविचारसे अपने धरपर [आनीतः] पहुँचाया तं श्री

7. All the substantial objects are in every way the frozen forms of contemplation, as it were a liquid, which, through the diverse view

adopts the form of the Universe of manifold animate and inanimate objects (like the sea water which is getting separated from the ocean through evoporation is transformed into snow, ice and hailstone) and merges into its origin (Samvid) through the shine of the spiritual (Samvid-like) cogitation, as it were the Sun, like the snow, ice and hailstone, which on melting, join again their origin, the ocean. To enable him (Shri Vidhyadharji) explore this Purna-Ahanata mystery, Yogeshwara Parma Shiva, who is also named as Amriteshwar, brought him thus to his place, the cave of Shri Amarnathji, (where Ama-Kala nectar drops waxes up to sixteen phases day by day with the moon of seventeen phases and in this way, on being formed into a solid Lingam, (block), becomes the worth-seeing object of the world. Thereafter it wanes with the moon, phase by phase, until it disappears into the invisible everlasting seventeenth phase "Ama". This is thus the practical example in the modern times that the Parma Shiva when contemplating a change creates a Universe out of His Bliss and merges it unto His Self (Bliss) invariably. There is a Shastric reference to this effect एताकला विलीयन्ते ततःसप्तदशीकला अमाकलेति विख्याता,, and तस्मै शक्तिकलास्फार सामरस्यैक हेतवेनमः इति,, that is these phases after the mergence remain the seventeenth phase "Ama".

Reverence be to Shiva, who, likewise, creates and merges the Universe with His Bliss.

स्वानारण्यावटझरमहीध्रेषुचीर्णव्रतोयो
योगक्षेमी वितरणमति श्चिन्तयदात्मज्ञानम् ।
दानंभूत्यैभवति जगतांशिक्षयंश्चाविनीतां स्तं श्रो०॥८॥

(यः) जो विद्याधरस्वामी (सान्वपु) पर्वतों के ऊंचे प्रदेशों पर, (अरण्येषु) वनोंमें, (अवटेषु) गढोंपर, (झरेषु) बीहडोंपर 'जहांसे पानी नीचे गिरताहो' (महीध्रेषु) पर्वतोंपर, (चीर्णव्रतः) धरेहुये तपस्यारूप व्रतवालाथा जिससे [योगक्षेमी] नप्राप्तहुयेको प्राप्तकरनायोगकहलाता है और प्राप्तहुयेको पालना करनी क्षेम कहलाता है उहही दो जिसको हों उसका नाम योगक्षेमीहै एसे योग-क्षेमी तपस्याकरने से प्राप्तहुये ईश्वरानुग्रहवाला योगेश्वर (वितरणमतिः) दानके लिए निश्चय वाला 'व्रतधारी को दान करना परमकर्तव्य होताहै यह शास्त्रनियम है' इसकारण (चिन्तय दात्मज्ञानं दानं भूत्यै भवति जगतां] यह विचार करने लगा कि निःसारधन दान देनेसे जनताको मोहआदि बड जायेगा इस कारण आत्मज्ञान ही दान देना चहिये जिससेदाता और लेने वाला दोनों उत्तम संपत्तिके अधिकारी हो जैसा कि शंकरने शिव सूत्रोंमें कहा है दानमात्मनज्ञाम् । शि० सू उ ३ सू २६ जो दिया जाये उसका नाम दान है योगीको चाहिये कि शिष्यको आत्म

ज्ञानका दान देवे इत्यादि, आगेचलकर कहताहै कि योगी ही सत्यतया शिष्यों को अज्ञानसे निकालता है इसकारण शिक्षयंश्चाविनीतन्) अविनीत अर्थात् मलिन- चित्तवालों को भी शिवज्ञान का पात्र बनातारहा (विनययुक्त जनों को (शवाम्नायका पात्रबनाना स्वकर्तव्यही, उन्हें था) तं श्री० ॥८॥

8. Shri Vidhyadharji was observing a fast in the manner of penance on peaks, hill tops, in forests and spots of waterfalls and thereby becoming a devotee of the Lord made up his mind to give charity to people (since it is the foremost task for a fast observer to give charity). Thinking that giving charity in substance would cause them engrossed in them, he preferred to bestow on them the spritual knowledge only, by which the giver and the taker both attain to high divine glory (as Shankar has said in Shiva-Totra 'Whatever is given is charity, a Yogi should impart spritual knowledge to his disciples). As, it is but natural to be kind and generous to beseeching people, he continued making the ignorant people worthy of the knowledge of Shiva.

क्रीडाशीलो वलित स्वतनुश्चेत्यसंकोचधर्मा
संसारीस्याच्छिवइत्युदितं शक्तिसूत्रेषुसम्यक्

तत्रोपायं स्वकरमविदद्‌द्युमो भैरवोय स्तंश्री ।६।।

(क्रीडाशीलः शिवः) क्रीड़ारसिक पमेश्वर (वलित स्वतनुः
पूर्णता छोडकर आणव मायी कार्मरूप आवरण से अपनेआप
को ढाँपकर (चेत्यसंकोच धर्मा) सुख दुःखरूप भावराशि पर
संकोच धरकर शरीर आदि का अभिमानी बनाताहै जिससे
परिमित प्रमाता 'बहुतही अल्प पदार्थपर अहंता रखनेवाला'
बनजाताहै, ऐसा होनेपर (संसारीस्यात) उन सुख दुःखोंमे
दब्बा हुआ संसारी पशु बनजाताहै (इत्युदितं शक्तिसूत्रेषु
सम्यक) यह शक्तिसूत्रोंमें 'जिनका नामान्तर प्रत्यभिज्ञाहृदय
है' कहा है जैसे (चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्य संकोचिनी
चित्तम्। श सू ५ ।अर्थः चिति (परासंविन्) अपने स्वातंत्र्य से
संकुचितग्राहक बनकर अपने चेतनपद (पराशक्तिअवस्था)से उतर
कर भावजातपर आसक्त होजातीहै जिससे आभ्यन्तरवाबाह्य
सुख दुःखादिकसे रांञ्जत होजाती है उसी का नाम जीव वा
पशु प्रमाता है। (चिद्वच्छक्तिसंकोचान्मलावृतः ससारी श सू ९
चिदात्मा परमेश्वर अपने स्वातन्त्र्यसे भेदव्यापृत होजाता
है अर्थात् पूर्णता को छोडकर संकुचित प्रमाता बनजाताहै
तोउसकी शक्तियां भी पूर्णता छोडकर संकुचित दिखाई
देतीहैं (तत्रोपायं सुकरं) ऐसी दशामें, संसारी (पशुप्रमाता
का पतित होना नसहन करता हुआ जो योगेश्वर (उद्यमोभैरवः

शि सू ५ उ १) इसपरमशिव के शासनको(इन्द्रियों द्वारा निकल कर बिखरी हुई विमर्शशक्ति को रोकथाम करना अर्थात स्वात्मरूप देखना उद्यम कहलाताहै । विभिन्नविकल्प को समूचकर ग्रासकरना भैरव कहलाता है) संसारके दलदलमें मग्न हुये पशुके लिए उद्धार करनेवाले उपायको अविदत् जान सका। तंश्री० ॥६॥

9. Sportive Lord when other than perfect and covering Himself in the veil of illusion, disposes the entire Universe which is full of sorrow and joy to delusion and constraint, whereby man gets arrogant and self conceited; and being embarrassed with the worldly joy and sorrow becomes like a beast. It is pointed out in the Shiva-sutra 'Pritibhijnia Hridaya' that on being embarrassed, the intellectual faculty in man recoils from its desideratum (becoming Shiva) and getting attached to the world (wherein he is engrossed through external or internal joy or sorrow), he gets named 'Pashu-pramata'. Through his independence when the Super-conscious Almighty effects a change (avoids His perfect state) He becomes imperfect (living being) and then His consorts also lose their integrity and become imperfect.

In this state of affairs it was the Yogeshwara (Shri Vidhyadharji) who not

bearing the degradation of 'Pashu-pramata' (the living being) who is lying lost in the worldly marsh, found a way out for him in the precept of Parmashiva "उधमा" (The determination of bringing under control the sensual passions is termed as उधमः and to curb persistently the apprehension that presents the Universe as diverse and ultimately, causing it to disappear altogether (literally swallowing it) is called भैरवः

शैवाम्नाय प्रवचनरतिःशंकरोयोहि
देवः पीयूषांशुरिवमुखरुचाह्लादयञ्छिष्यसंघान्
दीप्त्या भास्वानिव हृदयपंकेरुहोद्बोधहेतुस्तं श्री०।१०।

(शैवाम्नाय) शिवसंबन्धी जो शास्त्र है [प्रवचनरतिः] उसके व्याख्यान करनेपर अर्थात् दूसरां के हृदयां में सद्बोधसंस्कार करनेके अभिलषसे (शंकरो योहिदेवः) जो साक्षत् शंकरजैसा है तथा [मुखरुचा] प्रसादगुण वाली मुखकी शोभासे जो (पीयूषांशुरिव) अमृतकिरण धारण करनेवाला चन्द्रमदेव जैसा (शिष्यसंघान् छात्र समूहों को [ह्लादयन्] सुखदेनेवाला है तथा जो (दीप्त्या) विमर्श प्रकाशसे [भास्वानिव] सूर्यदेव जैसा (हृदयपंकेरुहोद्बोधहेतुः हृदयकमलके अख्याति [अज्ञान] रूप सकोचको मिटाकर ख्याति (पूर्णज्ञान) रूप विकासके कारण

वने है स्तं श्री ॥१०॥

10. Who (Shri Vidhyadharji) due to his teachings on Shiva texts with the idea of imparting proper knowledge to people, took after Shankara, and with his superb and polite tongue used to inspire and delight his disciples like the moon with its nectareous beams. Being full of super-realisation, he was like the Sun removing darkness (ignorance) and emitting light (knowledge) instead.

जज्ञे लग्ने धनुषि सविधौयस्तुमीनेथकेतौ
भौ सौरेरतिगृहगतेकर्कटे चाष्णरश्मौ ।
शुक्रेज्ञेज्येनवमगृगहे कन्यकायांचराहौ तं श्री० ॥११

जो विद्याधरस्वामी धनुलंग्नपर (जहां उससमयचन्द्रमाथा) उत्पन्नहुयेथे जब और मीनराशिमें केतु था और शनि तथा भौम जब सातवेंघरमें था कर्कटमें जब सूर्य था शुक्र बुद और जीव नवें घरमें था कन्या में राहुथा, स्तं श्री ॥११॥

11. Swami Shri Vidhyadharji was born when the Moon was ascendant in Sagittarius, Descending node in Pisces, when Mars and Saturn were in the Zodical sign Gemini, the Sun in Cancer, Mercury, Venus and Jupitein Leo, and Ascending node in the clodecar temary Virgo.

भूयःस्यात्प्रतिमीलनंप्रतिभुवः सूत्रंशिवस्यान्तिमं
सम्यग्यो प्यवधार्य शाश्वतपदं शैवं सहस्यामले
बाणद्वयभ्रशरे समे पिचतृतीयस्यांनिशान्तेययौ
श्रीविद्याधर स्वामिदैशिकमणिर्भूयादघध्वंसकृत् ।

(प्रतिभुवः ऐसेकर्मका ऐसा फल मैं देनेवाला हूँ ऐसामुक्तकण्ठ होकर घोषणाकरने वालेका नाम प्रतिभू कहलाता है, (भूयः-स्यात्प्रतिमीलनम्, शि सू-४५-उ-३ यह शिवस्यान्तिमंसूत्रम् ऐसे प्रतिभू बनेहुये शिवका अन्तिमसूत्ररूप शसन (सम्यग्योप्य वधार्य) जो योगेश्वर अछेप्रकार विचारकर कि परमेश्वर से प्रथक हूये जीवको पूर्वोक्त शिवशासनके अनुसार आचरण करने से द्वैतनष्ट होनेपर समुद्र से प्रथकहुये बिन्दु आदि को उसी महासमुद्रमें मिलनेसे जेसे, परमशिवसे सायुज्यहोनेवाला है ही, जिसकारण शंकर काशासन अटल है यह अच्छे प्रकार निश्चय करके (सहस्य मार्गशीर्षमासके [अ-मले-)शुक्ल पक्षमें (बाण-५-द्वि-२ अभ्र-० शरे-वर्षमें, अङ्कों की गति वामतः (दायें से बांयें को जाती है इस नियतिसे ५०२५ संवत्सरमें अर्थात् सप्तर्षिसंवत् ५०२५ के मार्गशीर्षशुक्लपक्षतथीथा के (निशान्ते) रात्रिके पीछले भागमें आनवाले उषः कालमें निशान्त शब्द को द्वितीयावृत्ति करके निशान्ते अपने

घर (आश्रम) पर (शाश्वतपदं शैवं) नटलनेवाले शिवधाम को (जिसधाम को पाकर फिरभी संसार से उत्पन्न हुआ त्रास नहीं हो सकता है ,कहा भी, है (उद्बोधितो यथा वह्नि निमललोऽतीवभास्वर: नपुन: प्रविशेत्काष्ठे तथात्माध्वन उद्धृत: अर्थात् काष्ठसे उडी हुई चमकीली ज्वाला फ़िरभी काष्ठमें नही घुसजाती है ऐसेही आत्मा शिवीभाव पाकर फिरभी संसार में आवागमन नहीं पाता है (ययौ) पहुँचागया वही श्रीविद्याधर स्वामि दैशिमणि:) श्रीविद्याधरस्वामि कनामवाला उत्तम उपदेशक [भूयादद्यध्वंसकृत] आणव आदि मलरूप पापोंको नाश करनेवाला हो ॥१२॥

12. Reposing fully in the last Sutra of Shankara —— (he who proclaims that here-wards a certrin oction in a specified way) and confiding that the (Jiva living being on being separated from Him (Lord) would positively rejoin Him (when devoid of discrimination and acting upon the aforesaid Shiv precept) like drop of water from an ocean; he (Shri Vidbyadharji) migrated(passed away) to the eternal abode of Shiva (on reachint to which none comes back to the mortal world) on the third of the bright fortnight os Marghashirsha of the Saptarishi year 5025 in the morning; as is said "The soul after attaining to Shiva, does not return to the world like the flame which does not get

again into the wood from which it bursts out once". May such Shri Vidhyadhar Swami —— the great teacher —— wash off our sins like Anwa.

यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सत्वरं श्यामचेतसां
सुन्दरोजायतेबोधःशरणं सोस्तुनःशिवः॥१३॥

(यत) जिस जिस परमशिवके (पादपद्मस्पर्शात्) चरणकमलोंके ध्यानतत्पर रहनेसे (श्यामचेतसां) भेदप्रथासे मलिनहुये (अन्तः करणवालों का (तत्वरं) शीघ्रही (सुन्दरा बोधः) पराहन्ता परामर्शात्मकज्ञान अर्थात् जिससे सारा विश्व केवल अपनाही स्वरूप वा अपनाही ऐश्वर्य बनजाये ऐसा उत्तमज्ञान [जायते] उत्पन्न होजाता है (सः, ऐसा करुणानिधिपरमशिव (शरणम्) पालक अथवा समावेशकास्थान (नः, हमको (अस्तु) हो ॥१३॥

13. May that Super-knowledge Parma Shiva [due to meditation wherein, even the inconsistent minded achieve to Purna-Ahanata (self the entire cosmos)] be our Saviour and goal.

SHYAM SUNDAR JATTU

Disciple of Shri Acharya Harbhath Shastri